समयसार, कलश १५ है। १५ कलश।

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम्॥१५॥

क्या कहते हैं? **एषः ज्ञानघनः आत्मा....** यह भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल, इस **स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुषों को....** स्वरूप की प्राप्ति के अभिलाषी पुरुषों को **साध्यसाधकभाव के भेद से.....** आहाहा! यह आत्मा पूर्ण स्वरूप शुद्ध, वह साध्य और अपूर्ण स्वरूप, वह साधक (है)। आत्मा जो ज्ञायक त्रिकाल ज्ञानस्वरूप, वह जो दृष्टि का विषय, उस आत्मा को साध्य-साधक भाव से सेवना। इसका अर्थ? साध्य अर्थात् पूर्ण मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, वह साध्य है। इस

आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा, वह साध्य और अपूर्ण निर्मलदशा वह साधक (है)। रागादि साधक और पूर्ण साध्य — ऐसा नहीं है। समझ में आया? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु (है), वह वस्तुस्वभाव एकरूप त्रिकाल (है)। इसको दो प्रकार से सेवन करना — एक तो साध्य जो पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञान वह साध्य भी आत्मा की पूर्ण दशा और आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र जो निश्चय, वह साधकदशा, वह आत्मा की शुद्धता की अपूर्ण दशा, साधक और आत्मा की पूर्ण दशा, वह साध्य। समझ में आया?

स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुषों को साध्यसाधकभाव के भेद से एक ही नित्य सेवन करने योग्य है।.... आहाहा! यह आत्मा जो पूर्ण स्वरूप शुद्ध, उसकी निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, जो निर्विकल्प आनन्द-जो अपूर्ण साधकदशा, वह पूर्ण साध्य का कारण है। पूर्ण साध्य जो परमात्म दशा, इसकी वह साधक है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है और निश्चय साध्य है — ऐसा नहीं है तथा वर्तमान में व्यवहार साधक है और निश्चय जो साधकभाव है, साध्य का कारण (है) उसका व्यवहार कारण और निश्चय साधक/कार्य — ऐसा है नहीं। अरे...रे...! समझ में आया? पण्डितजी नहीं? गये? ठीक।

आत्मा अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प से रहित पूर्ण ज्ञानघन की अपेक्षा लेकर — आश्रय लेकर जो शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय स्व के आश्रय से प्रगट हुआ वह साधकदशा अपूर्ण है और पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति वह साध्यदशा पूर्ण है, तो पूर्ण और अपूर्ण दोनों आत्मा द्वारा साधन करना। आत्मा अपूर्ण शुद्धता से परिणमन करना, वह साधक है और आत्मा पूर्ण निर्मलरूप से साध्य प्रगट करे, वह साध्य है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय साधक है और निश्चय साधक पर्याय, वह साध्य है — ऐसा नहीं। वैसे ही व्यवहाररत्नत्रय साधक है और साध्य केवलज्ञान है — ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! बात ऐसी, भाई!

१४ गाथा में दर्शन का अधिकार चला; १५ में ज्ञान का अधिकार; अब १६ वीं में दर्शन, ज्ञान और चारित्र — तीन का अधिकार साथ में (चलता है)। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण सच्चिदानन्द, उसका वह आत्मा ही अपूर्ण साधक शुद्धतारूप परिणमन करे, वह उसकी साधकदशा (है) और वही आत्मा पूर्ण साध्य की दशा प्रगट

करे, वह उसका ध्येय। वह साधक भी आत्मा की शुद्धदशा, वह साधक है और आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा, वह ध्येय अर्थात् साध्य है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : व्यवहारनय साधक तो कहलाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय साधक तो निमित्त से कथन है, वह है नहीं; है नहीं उसको कहना, वह व्यवहार है। आहाहा!

श्रोता : दशा को ध्येय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण दशा को ध्येय कहा, अपूर्ण दशा को साधक कहा। समझ में नहीं आया? पुण्य-पाप के विकल्प से रहित भगवान पूर्णानन्द प्रभु की पूर्ण दशा-शुद्धता की पूर्ण दशा, वह साध्य और शुद्धता की अपूर्ण दशा, वह साधक (है)। आहाहा! ऐसी बात है। इस व्यवहार के रसिया को यह कठिन पड़े ऐसा है। व्यवहार करते-करते साधकदशा प्रगट होगी और व्यवहार करते-करते साध्य केवलज्ञान प्रगट होगा — यह सब बात झूठ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो **दो प्रकार से, एक ही आत्मा....** ऐसा है न? **दो प्रकार से, एक ही आत्मा....** तो आत्मा तो पुण्य-पाप से रहित वह आत्मा शुद्ध आनन्दघन, वह एक ही दो प्रकार से सेवन करना। आहाहा! इस आत्मा की अपूर्ण साधक निर्मल उपयोगदशा — शुद्ध उपयोगदशा, वह साधक और पूर्ण साध्य केवलज्ञानदशा, वह साध्य है; बीच में कोई व्यवहार कारण है या फारण है, वह इसमें है ही नहीं।

श्रोता : कथंचित् होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् होता है साधक शुद्ध वह — द्रव्य नहीं, वह कथंचित्। क्या कहा यह? द्रव्य जो त्रिकाली है, वह कथंचित् साधक है — ऐसा नहीं है। वह निर्मल पर्याय साधक है। निर्मल पर्याय का ध्येय तो (त्रिकाली द्रव्य) यह है। परन्तु यहाँ वह नहीं लेना। यहाँ तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु के अवलम्बन से शुद्धता-शुद्ध उपयोग-दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, उसको (दशा को) यहाँ साधक / कारण कहा जाता है, और उसकी पूर्ण साध्यदशा — शुद्ध कार्य साध्यदशा कही जाती है।

भाषा तो बहुत सादी परन्तु अब इसे.... समझ में आया? आहाहा! अनजान लोगों

को तो ऐसा लगे यह क्या है ? क्योंकि कभी 'यह धर्म क्या चीज है ?' — अभी तो सम्प्रदाय में भी यह कुछ नहीं चलता। यह व्रत करो और तपस्या करो, भक्ति करो और पूजा करो.... यह तो सब राग की क्रिया है भाई ! यह कोई साधक नहीं है। आहाहा !

यहाँ साधक तो इसको कहा जाता है, गुणस्थान - चौथे से बारहवें तक साधक कहते हैं; तेरहवें में साध्य कहते हैं तो यह चौथे गुणस्थान की जो दशा वह पाँचवें की, छठें की दशा.... स्वात्मा के ध्येय से-आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुआ) अशुद्धता को छोड़कर शुद्धदशा अपूर्ण प्रगट हुई, इसको यहाँ साधक कहा जाता है। साधक कहो या कारण कहो। समझ में आया ? और इस आत्मा की पूर्ण निर्मल दशा साध्य कहो या कार्य कहो। पाटनीजी ! स्वयं ही कारण और स्वयं ही कार्य। आहाहा ! यहाँ यही सिद्ध करना है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु अपूर्ण शुद्धतापने परिणमे वह कारण और वह साधक; वह भगवान पूर्ण साध्य निर्मलपने परिणमे, वह कार्य तथा वह साध्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : कार्य तो द्रव्य के आश्रय से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अभी यहाँ ध्येय की बात यहाँ नहीं है। संस्कृत टीका में ध्येय लिया है, कलश टीकाकार ने (लिया है), परन्तु यहाँ यह लेना, यह। ध्येय बनाकर द्रव्य स्वभाव को ध्येय बनाकर जो पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसको यहाँ आत्मा साधकपने परिणमा — ऐसा कहा जाता है। भले ध्येय/दृष्टि वहाँ (त्रिकाली द्रव्य पर) है, यह बात यहाँ नहीं है। द्रव्य के — त्रिकाल ध्येय के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र हुआ परन्तु यहाँ सम्यग्दर्शन-चारित्र जो शुद्ध हुआ, उसको कारणरूप — साधकरूप कहकर पूर्णदशा को कार्यरूप कहकर साध्यदशा कहा गया है। एक ही आत्मा अपूर्णरूप, अशुद्धरूप से परिणमना, वही आत्मा पूर्णरूप से परिणमना, यह कारण और कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

कठिन बात है भाई ! लोगों को अन्तर-यह भगवान अन्दर.... आहाहा ! यह पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण स्वभाव, जिसका स्वभाव है, वह अपूर्ण और विपरीत कैसे हो ? आहाहा ! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द आदि, ज्ञानादि, शान्ति आदि, स्वच्छता आदि, प्रभुता आदि, पूर्ण स्वभाव का भर-भर — भरपूर.... 'भर' शब्द एक हमारे यहाँ काठियावाड़ में चलता

है। गाड़ी में आवे न गाड़ी में माल भरते हैं न भर भरा कहलाता है। पच्चीस मण-पचास मण भर, भरभरा कहलाता है। ऐसे शास्त्र में भर आता है, भगवान पूर्णानन्द का भर है। आहाहा!

पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण प्रभुता को ध्येय बनाकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसको शुद्धता की अपूर्णता है; इस कारण उसको साधक कहा और कारण कहा। आहाहा! समझ में आया? और वह द्रव्य ही पूर्णरूप से — शुद्धरूप से परिणमे... आहाहा! द्रव्य ही अशुद्धरूप से-अपूर्णपने परिणमे, ऐसे द्रव्य ही शुद्धपने परिपूर्णपने परिणमे, वह साध्य-साधक वही है। आहाहा! यह साथ में चारित्र अधिकार लिया न? आहाहा! दर्शन, ज्ञान का अधिकार तो दोनों आ गये हैं (गाथा) १४ में सम्यग्दर्शन, १५ में सम्यग्ज्ञान.... आहाहा!

यह श्रोता की व्याख्या अलग, यह श्रोता की व्याख्या है। यह जैनधर्म की श्रद्धा, हाँ! वह अभी समकित नहीं वहाँ, समकित तो बाद के अनुभव कर वहाँ लेगा — ऐसा श्रोता होना चाहिए कि जिसे जैनधर्म की यथार्थ श्रद्धा हो, समकित ने अभी अनुभव नहीं। आता है न वह? और बाद में फिर श्रोता लिया है कि अनुभवी-आत्मा का अनुभवी श्रोता हो तो वह तो ठीक है। क्योंकि उसे क्या कहते हैं? उसका उसे बराबर ख्याल आता है। समझ में आया? आहाहा! है या नहीं इसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक है न यह? ग्रन्थ की प्रमाणिकता के बाद श्रोता की (बात) आती है। 'श्रोता का स्वरूप' देखो! पुनश्च जो जैनधर्म का दृढ़ श्रद्धालु... यहाँ अभी अनुभव नहीं लेना, अनुभव की बात बाद में आयेगी, अनुभव आयेगा परन्तु बाद में, यहाँ तो अनुभव बिना प्राणी जैनधर्म की श्रद्धा बराबर है, अन्य की बिल्कुल नहीं — ऐसा श्रद्धालु जीव, नाना प्रकार के शास्त्र सुनने से जिसकी बुद्धि निर्मल हुई है और व्यवहार निश्चयनय का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर सुने हुए अर्थ को यथार्थ रीति से निश्चय जानकर अवधारण करता है, यह श्रोता की व्याख्या है। समझ में आया? और बाद में श्रोता में आता है। आहाहा!

जिसको आत्मज्ञान न हो तो उपदेश का मर्म नहीं समझ सकता। आहाहा! है? इसलिए आत्मज्ञान द्वारा जो स्वरूप का आस्वादी हुआ है, आहाहा! आत्मज्ञान द्वारा आत्मा का आस्वादी हुआ है, वह जैनधर्म का रहस्य का श्रोता है, वह जैनधर्म के मर्म का श्रोता है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : यह अनुभवी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? यह वहाँ अनुभवी है। पहले अभी श्रोता है, इतना बस ! जैनधर्म की श्रद्धा है, अन्य धर्म की नहीं। वह श्रद्धालु जीव श्रोता के योग्य है, इतना ! परन्तु जो अनुभवी जीव हो वह तो रहस्य को जाननेवाला है। समझ में आया ? मार्ग बापू बहुत सूक्ष्म, भाई ! अपूर्व और सूक्ष्म आहाहा ! यह पहले अध्याय में है न।

यहाँ कहते हैं — आहाहा ! जिस (को) पूर्ण प्राप्ति अभिलाषी है, सिद्धि (अर्थात्) पूर्ण प्राप्ति का अभिलाषी है, ऐसे जीव को, जो अपना पूर्णानन्द प्रभु अन्तर आत्मा (है), उसका अन्तर आत्मा के आश्रय से जो शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान और शुद्ध चारित्र की रमणता — ये तीनों हुए हैं, वह साधक कहा जाता है क्योंकि शुद्धि की परिपूर्णता नहीं, शुद्धि की अपूर्णता है; इस कारण उसे साधक कहा जाता है और शुद्धि की पूर्णता जिसे प्राप्त हुई, उसे यहाँ साध्य अर्थात् प्राप्ति करने के योग्य वह साध्य कहा जाता है। आहाहा ! ऐसी बात है।

यह सब अटपटा जैसा लगे, अनजाने को तो। है यह पता है ! कुछ पता नहीं धर्म क्या है, यह क्या चीज है ? आहाहा !

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने जो धर्म कहा, वह साधकपने परिणमन को धर्म कहा। समझ में आया ? धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो अनन्त ज्ञानादि धर्म पड़ा है... धर्मी ऐसे भगवान प्रभु में अनन्त आनन्द, ज्ञानादि धर्म पड़ा है, उसके लक्ष्य से, उसके आश्रय से पर्याय में जो शुद्धता प्रगट हुई, वह पर्याय का धर्म है। वह द्रव्यस्वभाव, उसका गुण, द्रव्य का धर्म और द्रव्य के आश्रय से जो प्रगट दशा हुई, वह पर्याय धर्म है — ऐसी बातें हैं। उस अपूर्ण पर्याय धर्म को यहाँ साधक कहा और पूर्ण साध्य शुद्धदशा को यहाँ साध्य कहा।

भावार्थ : आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है.... देखो ! लो ! यह तो एक ही प्रकार से, भगवान शुद्ध चैतन्य है, **परन्तु उसका पूर्णरूप साध्यभाव....** देखो ! **और अपूर्णरूप साधकभाव है; ऐसे भावभेद से दो प्रकार से एक का ही सेवन करना चाहिए।** दो प्रकार से भी एक ही आत्मा का सेवन करना चाहिए।

गाथा १६

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१६॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवितव्यानि साधुना नित्यम्।
तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यप्यात्मानं चैव निश्चयतः॥

येनैव हि भावेनात्मा साध्यः साधनं च स्यात्तेनैवायं नित्यमुपास्य इति स्वयमाकूय परेषां व्यवहारेण साधुना दर्शनज्ञानचारित्राणि नित्यमुपास्यानीतिप्रति-पाद्यते। तानि पुनस्त्रीण्यपि परमार्थेनात्मैक एव, वस्त्वन्तराभावात्। यथा देवदत्तस्य कस्यचित् ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं च देवदत्तस्वभावानतिक्रमाद्देवदत्त एव, न वस्त्वन्तरम्; तथात्मन्यप्यात्मनो ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं चात्मस्वभावानतिक्रमादात्मैव, न वस्त्वन्तरम्। तत आत्मा एक एवोपास्य इति स्वयमेव प्रद्योतते।

अब, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधकभाव है, यह इस गाथा में कहते हैं —

दर्शनसहित नित ज्ञान अरु, चारित्र साधु सेवीये।
पर ये तीनों आत्मा हि केवल, जान निश्चयदृष्टि में॥१६॥

गाथार्थ : [साधुना] साधु पुरुष को [दर्शनज्ञानचारित्राणि] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [नित्यम्] सदा [सेवितव्यानि] सेवन करने योग्य हैं; [पुनः] और [तानि त्रीणि अपि] उन तीनों को भी [निश्चयतः] निश्चयनय से [आत्मानं च एव] एक आत्मा ही [जानीहि] जानो।

टीका : यह आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो, उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है, इस प्रकार स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन

करते हैं कि 'साधु पुरुष को दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।' किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं किन्तु आत्मा की ही पर्यायें हैं। जैसे किसी देवदत्त नामक पुरुष के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण, देवदत्त के स्वभाव का उल्लंघन न करने से (वे) देवदत्त ही हैं — अन्य वस्तु नहीं, इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही हैं — अन्य वस्तु नहीं; इसलिए यह स्वयमेव सिद्ध होता है कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।

भावार्थ : दर्शन, ज्ञान, चारित्र — तीनों आत्मा की ही पर्यायों हैं, कोई भिन्न वस्तु नहीं हैं; इसलिए साधु पुरुषों को एक आत्मा का ही सेवन करना यह निश्चय है और व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए॥१६॥

गाथा - १६ पर प्रवचन

अब, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधकभाव है, यह इस गाथा में कहते हैं — (गाथा लो) १६, १६ —

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

नीचे हरिगीत —

दर्शनसहित नित ज्ञान अरु, चारित्र साधु सेवीये।
पर ये तीनों आत्मा हि केवल, जान निश्चयदृष्टि में॥१६॥

टीका : यह आत्मा.... यह आत्मा, कैसा ? **'येनैव हि भावेनात्मा साध्यः' यह आत्मा....** ऐसा पूर्ण आनन्दघन — ऐसा आत्मा **जिस भाव से साध्य तथा साधन हो जिस भाव से-पर्याय से साध्य-साधन हो उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है,....** आहाहा! जिस भाव से साधन अर्थात् साधकपना हो, जिस भाव से साध्य हो, उस प्रकार आत्मा को सेवन करना। आहाहा! अरे... सेवन करने का अर्थ ? — ध्यान की पर्याय में ध्येय बनाकर आत्मा में एकाग्रता होना। आहाहा!

इस प्रकार स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं.... दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं। तीन बोल आये न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र — (यह) व्यवहार हुआ। निर्मल पर्याय है, यह व्यवहार हुआ। आहाहा! निश्चय-ज्ञायकभाव त्रिकाली निश्चय हुआ और उसके आश्रय से जो पर्याय निर्मल-सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ; वह पर्याय हुई तो व्यवहार हुआ। आहाहा! यह **'साधु पुरुष को दर्शन ज्ञान चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।'.....** यह व्यवहारनय से कथन है। लोग पर्याय से समझते हैं, इस कारण पर्याय से कथन किया जाता है कि आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सेवन करना। वह तो पर्याय हुई परन्तु पर्याय से समझते हैं तो इस अपेक्षा से समझाया। वरना सेवन तो आत्मा का करना है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म पड़ती हैं। अरे! कभी अभ्यास नहीं, जहाँ भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, वहाँ झुकाव नहीं, इस चमत्कारिक चीज का ख्याल नहीं, आहाहा! उसको यहाँ साधक-साध्य क्या है? — यह ख्याल में — रहस्य ख्याल में आना कठिन है। इसलिए श्रोता में कहा न कि यदि समकिती ज्ञानी श्रोता हो तो उसको सुनने में रहस्य समझ में आता है। आहाहा! आहाहा!!

साधन (हो) उस भाव से नित्य-नित्य सेवना करने योग्य है। नित्य यह आत्मा जिस भाव से साध्य-साधक हो उस भाव से ही आत्मा नित्य सेवन करने योग्य है। आहाहा! **इस प्रकार से स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं।** तीन आये न? **'साधु पुरुष को दर्शन ज्ञान चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।'...** आहाहा!

यहाँ व्यवहाररत्नत्रय की तो बात ही नहीं, क्योंकि वह तो राग है और वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं....** क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीन हैं, वह तो भेदरूप हुआ तो व्यवहार हुआ। क्या? कि जो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु (है), उसकी अन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र — निश्चयदर्शन (ज्ञान) चारित्र — यह द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय का भेद व्यवहार हुआ। आहाहा! समझ में आया? साधु पुरुष को दर्शन-ज्ञान-चारित्र को... **किन्तु परमार्थ से,** व्यवहार से बात की, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन यह।

परमार्थ से.... आहाहा! पुण्य और दया, दान, व्रत व्यवहार से, यह यहाँ लिया ही नहीं और यह व्यवहार भी नहीं। यह तो असद्भूत व्यवहार है। आहाहा! झूठा व्यवहार (है) और यह आत्मा ज्ञायकस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र जो निर्मल है, ये तीन कहना वह व्यवहार है। आहाहा! तीन की सेवा करना, वह व्यवहार है।

परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं.... तीनों भेद है न, वह आत्मा ही है; आत्मा की पर्याय तो वह आत्मा ही है, तीन भेद है नहीं! आहाहा! अब ऐसी व्याख्या! ज्ञानचन्दजी! भगवान आत्मा को-दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सेवना, आहाहा! तो कहते हैं कि कार्य निश्चय — जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, परन्तु पर्याय है और भेद है तो व्यवहार कहा; परमार्थ से तो एक ही आत्मा का सेवन करना। आहाहा! समझ में आया? यह तो.... आहाहा!

श्रोता : रहस्य का उद्घाटन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह वस्तु ऐसी है। आहाहा!

साधु पुरुष को.... साधु उसको कहते हैं, आहाहा! कि जो साधे 'साधे इति साधु' दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधे, व्यवहार से; वह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प वह नहीं। यहाँ तो तीन भेद को साधे, वह व्यवहार से कहा जाता है। पर्याय है न? भेद हुआ न? आहाहा!

श्रोता : यही आत्म-व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्म-व्यवहार है। रागादि, मनुष्य व्यवहार। वहाँ — प्रवचनसार गाथा ९४ (में) कहा है। आत्म-व्यवहार, आहाहा! दया, दान, व्रतादि जो विकल्प हैं, वह मनुष्य व्यवहार-गति का व्यवहार-गति प्राप्त करने का भाव है और भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की निश्चयदृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह आत्मव्यवहार है। प्रवचनसार (गाथा ९४ में लिया है) आत्मव्यवहार!

श्रोता : अविचलित चेतनाविलास.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अविचलित चेतनाविलास, वह आत्म-व्यवहार; अपनी शुद्ध परिणति-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अविचलित विलास चेतना, वह आत्मव्यवहार है। आहाहा!

परमार्थवचनिका में ऐसा लिया है, वचनिका में कि — लोग अध्यात्म का व्यवहार भी नहीं जानते। जो आगम का व्यवहार है, वह साधते हैं और मानते हैं कि हम कुछ साधक हुए। व्यवहार जो आगम में कहा — ऐसा साधते हैं, परन्तु अध्यात्म का व्यवहार जानते भी नहीं, (— ऐसा) उसमें लिखा है। अध्यात्म का व्यवहार, शुद्ध भगवान के अवलम्बन से जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुए) वह अध्यात्म का व्यवहार है। आहाहा! कठिन बात भाई! समझ में आया?

परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों..... तीन पर्याय हुई न? **एक आत्मा ही है क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं....** यह पर्याय कोई अन्य वस्तु नहीं, आत्मा की है **किन्तु आत्मा की ही पर्याय है।** आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह आत्मा की पर्याय है; इसलिए आत्मा है — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : पर्याय को आत्मा क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा, व्यवहार है न, वह पर्याय व्यवहार से यह आत्मा ही है, व्यवहार वह पर्याय, निश्चय में एकरूप है।

यह कहा देखो, **जैसे किसी देवदत्त नामक पुरुष के....** देवदत्त नामक पुरुष के **ज्ञान, श्रद्धान और आचरण, देवदत्त के स्वभाव का उल्लंघन न करने से....** देवदत्त के स्वभाव का, उसका ज्ञान श्रद्धान, आचरण उल्लंघन नहीं करता। **देवदत्त ही हैं....** देवदत्त की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, वह देवदत्त ही है। आहाहा! **अन्य वस्तु नहीं, इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण.....** यहाँ ज्ञान पहले लिया है देखो! समझ में आया? उसमें कहा साधु-पुरुष को दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा सेवन करने योग्य है। यहाँ लिया **आत्मा में भी,** आहाहा! **आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से....** आहाहा! वे आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन नहीं करते। स्वभाव की परिणति है। आहाहा! वह विभाव परिणति नहीं; व्यवहार-राग की परिणति वह नहीं, आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह आत्मा का ज्ञान, आत्मा का श्रद्धान, आत्मा का आचरण — अन्दर रमणता, हाँ! शुद्धता, वह आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन नहीं करने से आत्मा ही है — इस अपेक्षा से आत्मा त्रिकाली

स्वभाव है, उसका परिणमन स्वभाव में हुआ, वह आत्मा ही है। स्वभाव का उल्लंघन नहीं करके, विभाव में नहीं जाते। आहाहा!

आत्मा ही हैं — अन्य वस्तु नहीं।.... जैसे देवदत्त की अपेक्षा से.... **इसलिए यह स्वयमेव सिद्ध होता है.....** स्वयं एव — स्व से सिद्ध होता है **कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।** देखो! वे तीन सेवन करने योग्य कहे थे। आहाहा! परमार्थ से तो एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है। आहाहा! पण्डितजी! जो तीनों का सेवन करने का कहा, वह व्यवहार पर्याय.... परन्तु पर्याय उसकी है तो व्यवहार कहा शुद्ध... निश्चय से तो एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है। एक आत्मा; तीन भेद भी नहीं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु की — एक की ही सेवना करना बस! उसमें से दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होता है, भेद.... आहाहा! है या नहीं सामने? पाठ है।

भावार्थ : दर्शन, ज्ञान, चारित्र — तीनों आत्मा की ही पर्याय हैं,.... देखो! यहाँ सम्यक् निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है; व्यवहार समकित और वह तो कथनमात्र है, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! व्यवहार तो एक कथनमात्र की चीज ज्ञान कराने को है। वह कोई चीज / वस्तु / मार्ग नहीं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र की ओर का शास्त्रज्ञान, वह कोई साधक नहीं। आहाहा! वह तो कथनमात्र व्यवहार कहा गया है। आहाहा!

अब इसमें निवृत्त कब होना? ए...ई... महेन्द्रभाई! धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, वह पिता मर गया तो फिर स्वयं घुस गया अन्दर, लड़कों और भाईयों के साथ।

यह तो इनका दृष्टान्त है। सबकी बात है न! आहाहा! प्रभु तुझे करने का काम बहुत भिन्न है। आहाहा! यह प्रवृत्ति का परिणाम तो राग-द्वेष और अज्ञान है। आहाहा!

श्रोता : पण्डितजी कहते हैं आपने गुजराती में कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? यह तो दृष्टान्त दिया, उस व्यापार में घुस जाते हैं न? ऐसा है भाई! यह हमारे भाई हैं न? घुस जाते हैं न, अमेरिका में भटकते हैं। हसमुखभाई आये हैं? नहीं आये, नहीं? भावनगर से, कल आये थे, दोपहर में आयेंगे, आज शनिवार है न? कल आये थे दोपहर, कोई कहता था निवृत्ति ले ली, पाँच लाख रुपये बस, समाप्त!

श्रोता : परन्तु हमारे पास भी पाँच लाख होने तो दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच लाख क्या, इसके पास करोड़ों पड़े हैं, धूल। आहाहा! गोदिकाजी! पाँच लाख होने दो, कहते हैं। पाँच लाख क्या? पाँच करोड़ होने दो ऐसा। आहाहा! परन्तु पाँच करोड़ हो तो भी कहाँ अब आत्मा में क्या? आहाहा! वह तो परचीज है, परचीज इसके पास आती है। पर को तो तीन काल में कभी स्पर्श नहीं करता, लक्ष्मी को तीन काल में स्पर्श ही नहीं करता। शरीर को तीन काल में स्पर्श ही नहीं करता, स्त्री के शरीर को तीन काल में स्पर्श ही नहीं करता। हाथ में यह पैसा है तो उसे आत्मा तीन काल में छूता ही नहीं। आहाहा!

तीसरी गाथा में आया है न, तीसरी? समयसार! कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को चुम्बन करते है (स्पर्श करते हैं) परन्तु अन्य द्रव्य की पर्याय को कभी तीन काल में चुम्बन नहीं करते। आहाहा! तीसरी गाथा है।

श्रोता : निश्चय से...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो कथनमात्र; है नहीं। निश्चय से स्पर्श नहीं करते, व्यवहार से स्पर्श करते हैं, है? यह निश्चय से स्पर्श नहीं करते — ऐसे परमार्थ से भी स्पर्श नहीं करते, व्यवहार से भी स्पर्श नहीं करते। आहाहा! आहाहा!! कहने में आता है। आहाहा! भगवान ने भी ऐसा व्यवहार से कहा, शरीर और आत्मा एक है — ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। अपने नहीं आया पहले समयसार में? परन्तु व्यवहार है और निमित्तरूप है तो बताते हैं इतना; परन्तु वह सच्चा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो अपने भगवान के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाली पर्याय है, उसे व्यवहार कहा (क्योंकि) भेद है न? आहाहा! अभी तो आगे लेंगे। यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय का है, पर्याय है, इस भेद को मेचक कहा है। कलश में आयेगा — मेचक, वह मलिन है। आहाहा! मलिन का अर्थ? कि तीन भेद हैं तो भेद को मलिन कहा जाता है और अभेद को निर्मल कहा जाता है। आहाहा!

एक जानिये देखिये रमि रहिये इक ठौर,
समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और॥

एक जानिये देखिये... भगवान आत्मा को जानना-देखना और रमना, बस! यही सिद्धि नहीं और, 'समल' व्यवहार का भेद, वह समल कहा जाता है। निश्चय को-अभेद को निर्मल कहा जाता है। समल — निर्मल भेद न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और, श्लोक है। गाथा का कलश आयेगा, उसका श्लोक (कवित्त) समयसार नाटक में (बनाया है)। हमारे वीरजीभाई बहुत कहते थे। वीरजी वकील, काठियावाड़ में दिगम्बर शास्त्र का अभ्यास पहले उनको, बहुत वर्ष हुए, ९०-९१ वर्ष में वे तो स्वर्गस्थ हो गये। यह बारम्बार कहते — एक देखिये जानिये.... एक भगवान त्रिलोक के नाथ को देखिये, जानिये, रमिये। बस! समल-विमल न विचारिये, भेद और अभेद का विचार नहीं करना। आहाहा! यही सिद्धि, यही मुक्ति का उपाय है। नहीं और — अन्य उपाय है ही नहीं। आहाहा! लोगों को बातें कठिन लगती हैं। सिद्धान्त ही ऐसा है, वस्तु की स्थिति ऐसी है। लोगों को सुनने को नहीं मिली, (वे) गड़बड़ करते हैं; इसलिए कहीं सत्य हो जाये? और बहुत लोग मानें, इसलिए सत्य हो जाये? सत्य तो सत्य ही है, माननेवाले थोड़े बहुत उसके कारण से वह सत्य नहीं है कि बहुत लोग मानते हैं, इस कारण से वह सत्य है और थोड़े मानते हैं, इसलिए असत्य है — ऐसी कोई चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा.... आहाहा! कल एक हिन्दी (हिन्दी भाषी) दो व्यक्ति थे, गये या नहीं? हिन्दी कोई दो व्यक्ति आये थे, बहुत प्रसन्न होते थे। अपने को अनजान थे, आहाहा! यह बात, सफल जीवन।

श्रोता : मालामाल कर दिया — ऐसा कहते हैं!

पूज्य गुरुदेवश्री : है? कल दो कहते थे, आये थे — शाम को आये थे। वे कहाँ के हैं यह कुछ पता नहीं परन्तु... ओ..हो...! यह वस्तुस्थिति! जिन्दगी को सफल करने की चीज है! वे तो बेचारे प्रसन्न हुए कि हमारा यह अवतार सफल हुआ। आहाहा! अरे! यह प्रभु की बात, आहाहा! भगवान के समीप जाना और दूर से हटना, आहाहा! रागादि-विकल्प से हटना और त्रिकाली आनन्द के नाथ के समीप जाना, आहाहा! यह मार्ग है।

भावार्थ : आत्मा.... **दर्शन, ज्ञान, चारित्र - तीनों आत्मा की ही पर्याय हैं,**

कोई भिन्न वस्तु नहीं हैं; इसलिए साधु पुरुषों को एक आत्मा का ही सेवन करना यह निश्चय है.... देखो! तीन का (भेद का) सेवन छोड़कर एक का सेवन... आहाहा! **और व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।** आहाहा!

कलश - १६

अब, इसी अर्थ का कलशरूप श्लोक कहते हैं —

(अनुष्टुभ्)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

श्लोकार्थ : [प्रमाणतः] प्रमाणदृष्टि से देखा जाये तो [आत्मा] यह आत्मा [समम् मेचकः अमेचकः च अपि] एक ही साथ अनेक अवस्थारूप ('मेचक') भी है और एक अवस्थारूप ('अमेचक') भी है, [दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः त्रित्वात्] क्योंकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व (तीनपना) है और [स्वयम् एकत्वतः] अपने से अपने को एकत्व है।

भावार्थ : प्रमाणदृष्टि में तीन काल स्वरूप वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखी जाती है, इसलिए आत्मा को भी एक ही साथ एक-अनेकस्वरूप देखना चाहिए॥१६॥

कलश-१६ पर प्रवचन

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य.... १६ वाँ

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

आहाहा! देखो! **प्रमाणदृष्टि से देखा जाये....** अभेद को भेद को दो को देखने

से — प्रमाण से देखना। प्रमाण अर्थात् अभेद को देखना और भेद को देखना, यह प्रमाणदृष्टि है। प्रमाणदृष्टि से देखा जाये तो **यह आत्मा एक ही साथ अनेक अवस्थारूप ('मेचक') भी है....** आहाहा!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो आत्मा के अवलम्बन से जो निश्चय हुआ, उसको यहाँ पर्याय है-भेद है, इसलिए मेचक कहा। व्यवहार है, मेल है, आहाहा! भेद पर लक्ष्य करेगा तो राग उत्पन्न होगा। मेचक है, व्यवहार है। आहाहा! क्या कहा? **एक ही साथ अनेक अवस्थारूप....** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **और एक अवस्थारूप ('अमेचक') भी है....** अभेद भी है। अनेक अवस्थारूप भी है और एकरूप भी है। एकरूप है वह निश्चय; अनेक अवस्थारूप है वह व्यवहार, दोनों को एक साथ जानना, वह प्रमाण। आहाहा! समझ में आया? ऐसा **क्योंकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व (तीनपना) है और अपने से अपने को एकत्व है।** देखो! यह मेचक है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र से त्रित्व है, वह मेचक है, तीनपना है, व्यवहार है और अपने से एकपने का भाव निश्चय है। आहाहा! समझ में आता है? गाथा अलौकिक थी, सब - १३, १४, १५, १६। शिक्षण शिबिर में १३ से चली है न? आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर एकरूप है तो उसका सेवन, वह निश्चय है और उसकी पर्याय भेद से सेवन कहना, वह मेचक अर्थात् व्यवहार है। राग और व्यवहाररत्नत्रय के सेवन की बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो निश्चयरत्नत्रय की सेवना, वह पर्याय है; इसलिए व्यवहार है, इसलिए मेचक है और एक का सेवन, वह अभेद और अमेचक है। एक को सेवन, वह अभेद है, निश्चय है, अमेचक है; पर्यायभेद को सेवन, वह मेचक है, व्यवहार है, अनेक है। आहाहा! इन अनेक अवस्थाओं को भी जानना और एकरूप चीज को भी जानना, वह प्रमाण ज्ञान कहा जाता है। ऐसी भाषा, किस प्रकार की यह? अनजान लोगों को तो अटपटी 'ग्रीक लेटिन' जैसी लगती है, (कि) क्या है यह? अन्य बातें ऐसी सरल होती हैं कि यह करो, यह करो और यह करो और वह करो, हो गया, जाओ। भगवान का ध्यान करो, भगवान का स्मरण करो... आहाहा! धूल में भी नहीं है, वह तो सब विकल्प / राग है। भगवान तो आत्मा है, उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र

में स्मरण करना यह भी भेद है। आहाहा! वह एकरूप से अन्दर में रमण करना, वह अभेद-एक है, यह निश्चय है। आहाहा!

भावार्थ : प्रमाणदृष्टि में तीन काल स्वरूप वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखी जाती है,..... देखो! **भावार्थ : प्रमाणदृष्टि से....** प्रमाण अर्थात् द्रव्य और पर्याय दो का ज्ञान करने से। प्रमाणदृष्टि से **तीन कालस्वरूप वस्तु,...** द्रव्य और पर्याय दोनों देखी जाती है। द्रव्य भी देखा जाता है और पर्याय भी देखी जाती है। **इसलिए आत्मा को भी एक ही साथ एक-अनेकस्वरूप देखना चाहिए।** वस्तुरूप से एक, पर्यायरूप से अनेक; दो को एकसाथ देखना, वह प्रमाणज्ञान है। प्र — माण अर्थात् द्रव्य और पर्याय का माप करनेवाला ज्ञान। आहाहा! प्र — माण = प्रकष्ट से माप करनेवाला। अनेक पर्याय को माप करे वह व्यवहार है, एकरूप का प्रमाण करे वह निश्चय, ये दोनों मिलकर प्रमाण है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें हैं, बापू! वह (एक भाई) कहे यह समयसार पन्द्रह दिन में पढ़ गया! ठीक बापू!

श्रोता : होशियार हो तो पढ़ ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार धूल में है नहीं, आहाहा!

श्रोता : आत्मा में होशियार हो तो पढ़ लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़े तो भी क्या करे। कहा नहीं था भाई ने — रामजीभाई ने कहा नहीं था। रामजीभाई ने कल, दो रात में पढ़ ले, उसमें क्या? आहाहा! उसका भाव — 'वांचे पण नहीं करे विचार, वे समझे नहीं सघलो सार' — यह हमारे पुस्तक में आता था। ७५ वर्ष पहले पढ़ने में आता था 'वांचे पण नहीं करे विचार....' कवि दलपतराय था वह कहते थे 'वांचे पण नहीं करे विचार...' क्या है? यह क्या कहते हैं? भाव का पता नहीं, 'वे समझे नहीं सघलो सार' कुछ सार नहीं समझे, धूल धाणी... समझ में आया? आहाहा! इसलिए मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न? समकिती अनुभवी श्रोता है परन्तु रहस्य को जाननेवाला है किस अपेक्षा से कहा? वह जाननेवाला है, निश्चय व्यवहार को जाननेवाला है, अनुभवी, हाँ! आहाहा!

कलश - १७

अब, नय विवक्षा कहते हैं —

(अनुष्टुभ्)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

श्लोकार्थ : [एकः अपि] आत्मा एक है, तथापि [व्यवहारेण] व्यवहारदृष्टि से देखा जाये तो [त्रिस्वभावत्वात्] तीन स्वभावरूपता के कारण [मेचकः] अनेकाकाररूप (मेचक) है, [दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः त्रिभिः परिणतत्वतः] क्योंकि वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र — इन तीन भावों में परिणमन करता है।

भावार्थ : शुद्धद्रव्यार्थिक नय से आत्मा एक है; जब इस नय को प्रधान करके कहा जाता है तब पर्यायार्थिक नय गौण हो जाता है, इसलिए एक को तीन रूप परिणमित होता हुआ कहना सो व्यवहार हुआ, असत्यार्थ भी हुआ। इस प्रकार व्यवहारनय से आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणामों के कारण 'मेचक' कहा है ॥१७॥

कलश - १७ पर प्रवचन

अब, नय विवक्षा कहते हैं.... पहले प्रमाण कहा। द्रव्य और पर्याय दो का ज्ञान एक साथ करना वह प्रमाण है। दो का एक साथ ज्ञान करना, वह प्रमाण है। अब एक का, एक का ज्ञान करना, वह निश्चय है।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

आहाहा! **आत्मा एक है, तथापि व्यवहारदृष्टि से देखा जाए तो तीन स्वभावरूपता के कारण....** तीन स्वभाव, हाँ! यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र निश्चयस्वभाव, आहाहा! **तीन स्वभावरूपता के कारण....** तीन अर्थात् तीन प्रकार के। समझ में

आया ? **अनेकाकार** आहाहा ! मेचक.... अर्थात् अनेकाकाररूप मेचक है। तीन दर्शन-ज्ञान और चारित्र यह मेचक है भेद है, व्यवहार है। आहाहा ! कलश-टीका में तो ऐसा कहा है कि मेचक अर्थात् मलिन कहने का व्यवहार है। समझ में आया ? कलश-टीका में है न ? १७ वाँ है न ? १७ वाँ कलश। कलश १७ में आया। देखो ! **व्यवहारएण** गुण-गुणीरूप भेददृष्टि से मलिन है। मेचक का अर्थ ही मलिन किया है, क्या कहा ? समझ में आया ? आहाहा ! पर्यायदृष्टि, पर्याय को देखो, भेद को (देखो) तो कहते हैं, मलिन है। मलिन का अर्थ ? भेद का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। पर्याय का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। मेचक का अर्थ यह किया, १७ वें कलश में। **एकोऽपि व्यवहारेण मेचकः** द्रव्यदृष्टि से यद्यपि जीवद्रव्य शुद्ध है, तथापि गुण-गुणी के भेद की दृष्टि से मलिन है, वह भी किसकी अपेक्षा से ? दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हैं। सहज गुण जिसके। वह भी कैसा होने से ? जैसे कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीन गुणरूप परिणमता है; इसलिए भेदबुद्धि भी घटित है। है, पर्याय है। परन्तु मलिन कहते हैं। आहाहा !

श्रोता : यह व्यवहार अध्यात्म का....

पूज्य गुरुदेवश्री : अध्यात्म का व्यवहार है। यह कलश टीका है, राजमलजी ! आहाहा !

आत्मा एक है, तथापि व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप.... मेचक का अर्थ अनेकाकार। वहाँ (कलश टीका में) मेचक का अर्थ मलिन (किया है) आहाहा ! और **वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र — इन तीन भावों में परिणमन करता है।** आहाहा ! मेचक, है न ? **क्योंकि वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र — इन तीन भावों में परिणमन करता है।** और तीन रूप से सम्यक् (दर्शन) निश्चय, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, परन्तु तीनरूप परिणमन करता है तो मेचक अर्थात् व्यवहार कहा जाता है। आहाहा ! इस मलिन का यह अर्थ है। भेद कहो, मेचक कहो, व्यवहार कहो, मलिन कहो। भगवान त्रिकाली को अभेद कहो, निश्चय कहो, अमेचक कहो, निर्मल कहो, ऐसा है भाई ! कठिन बात है भाई ! यह अध्यात्म का व्यवहार ! आहाहा ! व्रत, दया, दान आदि का विकल्प तो असद्भूत व्यवहार, आगम का

व्यवहार (है)। आहाहा! यह अध्यात्म का व्यवहार! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को व्यवहार कहो, अनेकाकार कहो, मलिन कहो, मेचक कहो। आहाहा! है?

भावार्थ : शुद्धद्रव्यार्थिक नय से आत्मा एक है; जब इस नय को प्रधान करके कहा जाता है, तब पर्यायार्थिक नय गौण हो जाता है,.... दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों हैं; गौण हो जाता है। **इसलिए एक को तीन रूप परिणमित होता हुआ कहना सो व्यवहार हुआ, असत्यार्थ भी हुआ।** आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपने -तीनपने कहना, व्यवहार हुआ, असत्यार्थ हुआ। आहाहा!

श्रोता : मेचक हुआ अर्थात् राग हुआ-मलिन हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। इसे कहने का व्यवहार ऐसा है बस! आहाहा! समझ में आया? भेद है, उसको मलिन कहने का व्यवहार (है)। है तो तीनों निर्मल पर्याय परन्तु तीन प्रकार का भेद कहना, वह व्यवहार मलिन कहने में आया? आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : स्वच्छन्दता की तरह तो नहीं लगता — ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके जैसा?

श्रोता : स्वच्छन्दता जैसा तो नहीं लगता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चलता है, उसमें ध्यान रखो तो सब आ जाएगा। यह पूछने का प्रसंग रहता ही नहीं — ऐसी बात स्पष्ट आती है। आहाहा! यहाँ तो द्रव्यार्थिक से स्वरूप जो एकरूप चैतन्य है, उसको पर्यायार्थिकनय से तीन भेदरूप कहना — निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को पर्यायरूप से कहना वह व्यवहार है और उसे मलिन कहा जाता है। भेद की अपेक्षा से मलिन कहा जाता है। (विशेष कहेंगे!)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)